SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

पर्यटन की पष्ठभूमि में बौद्ध तीर्थस्थल

राणा उदय प्रसाद सिंह, Ph.D., इतिहास विभाग
जगदम कॉलेज, छपरा, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
राणा उदय प्रसाद सिंह, Ph.D.

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 28/12/2023
Revised on : -----
Accepted on : 29/02/2024
Overall Similarity : 06% on 21/02/2024

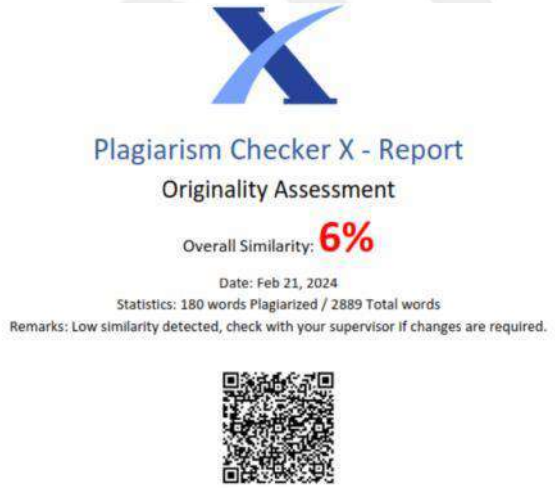

शोध सार

गौरवपूर्ण समृद्ध इतिहास के स्वर्णिम अध्यायों को संजोये यह बिहार प्रान्त प्राचीन काल से ही आकर्षण का केन्द्र रहा है। यह भूमि बुद्ध, महावीर की जन्मभूमि और कर्मभूमि रही तो राम–कृष्ण के जीवन से भी सम्बंधित रही है। बुद्ध ने बिहार के कण–कण को अपना सामीप्य और स्नेह देते हुए ज्ञान की अजस्र धारा से सिंचित किया था। इस पृष्ठभूमि में बिहार में अनेक बौद्ध तीर्थस्थल बने जिनकी अपनी ऐतिहासिक और धार्मिक महत्ता तो रही ही पर्यटन की दृष्टि से भी इनका महत्व बढ़ गया है।

मुख्य शब्द

पर्यटन, बौद्ध तीर्थस्थल, संप्रदाय, पृष्ठभूमि, पुरातत्व, यष्ठिवन.

प्रस्तावना

पर्यटन की दृष्टि से बिहार अत्यंत धनी प्रदेश है। धार्मिक दृष्टि से हिन्दू, जैन सिक्ख और मुस्लिम संप्रदाय के साथ–साथ बौद्ध धर्म से सम्बद्ध अनेक पर्यटन स्थल हैं। बौद्ध धर्म से संबद्ध यहाँ की ऐतिहासिक एवं धार्मिक धरोहर यथा–नालन्दा, राजगीर, बोधगया, और वैशाली की अतीत स्मृतियाँ भगवान बुद्ध और उनके पर्यटन भाव की उपयोगिता को बता रहीं हैं।

'परि' उपसर्ग के साथ अट् धातु में 'अन्' प्रत्यय लगने से परि + अटन अर्थात् पर्यटन शब्द बनता है। इसका अर्थ होता है–इधर–उधर भ्रमण करना, यात्रा करना। इस परिभ्रमण का जीवन के हर पक्ष से आनन्ददायी संबंध है, महत्ता है। मनुष्य ने सृष्टि के साथ ही पर्यटन का सहारा लिया। प्रारंभ में उसने जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यत्र–तत्र भ्रमण करना प्रारंभ किया था। इसी पृष्ठभूमि में उसके कदम विकसित सभ्यता की ओर अग्रसर हुए।

विकसित सभ्यता के लोगों के लिए पर्यटन का अधिक महत्व हो गया। सर्वप्रथम पर्यटन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रमुख आधार बना।[1] पर्यटन की पृष्ठभूमि में ही आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यात्रायें की गई। फलतः व्यापार और उद्योगों के विकास के साथ–साथ अनेक नगरों का भी विकास हुआ। पश्चिम में नगर–राज्यों का उद्‌भव हुआ तो पूर्व में भारत और चीन की महत्वपूर्ण सभ्यतायें विकसित हुई। कालक्रम से पर्यटन में धर्म का समावेश हुआ। अर्थात् जैन, बौद्ध आदि धर्मों के प्रचारार्थ पर्यटन का सहारा लिया गया।[2] इतना ही नहीं जैन और बौद्ध आदि धर्मों के बढ़ते प्रभावों के कारण अनेक तीर्थ स्थल बने। तीर्थ स्थलों की यात्रायें धार्मिकता से प्रेरित होकर की जाने लगीं और आज भी प्रमुख धर्मस्थलों की यात्रायें पर्यटन का महत्वपूर्ण अंग बन गई हैं। वर्तमान में इन तीर्थस्थलों के विकास की पृष्ठभूमि में पर्यटन की अपनी महत्ता है।

हिन्दू धर्मावलंबियों ने तो भारत के अन्दर ही तीर्थ यात्राओं को महत्व दिया किंतु ईसाई और बौद्धों ने धर्म प्रचार हेतु भारत ही नहीं अपितु सुदूर पूर्व एवं दक्षिण पूर्व एशिया के देशों की यात्रायें सदियों की और यह क्रम अभी भी है। धर्म प्रचार के क्रम में की जाने वाली सतत उत्साही यात्रायें दक्षिण पूर्व एशिया के उपनिवेशीकरण का एक महत्वपूर्ण कारण भी बनी। इस प्रकार के पर्यटन की जानकारी जातक आदि अनेक बौद्ध ग्रंथों से भी मिलती है।[3]

जैन प्रभु भगवान महावीर और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध ने भी अपनी ज्ञान रश्मि से लोगों का मार्ग दर्शन करने के निमित्त दूर–दूर तक भ्रमण किया था। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम–घूम कर इन्होंने क्रमशः मगध, काशी, कौशल आदि के अतिरिक्त राजगृह, नालन्दा, वैशाली, पंचशाला ग्राम श्रावस्ती आदि की यात्रायें करते हुए धर्म का प्रचार किया।[4]

भगवान् बुद्ध ने बौद्ध धर्म के स्थायित्व के लिए 47 वर्षों तक पर्यटन और धर्म प्रचार का प्रयत्न किया। पर्यटन काल में 46 वर्षों के वर्षावास किस तरह और कहाँ कहाँ हुए थे, इसका व्यवस्थित रुप तो नहीं मिलता है फिर भी 'अंगुत्तर निकाय' अट्ठकथा (2–4–5) में, जिसका अनुवाद महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की कृति 'बुद्धचर्या' (पृ. 75) में मिलता है। इस क्रम में तथागत ने क्रमशः ऋषिपत्तन (सारनाथ), राजगृह, वैशाली, मंकुल पर्वत पर, त्रयस्त्रिंश, सुसुमारगिरि, कौशाम्बी, पारिलेयक, नालाग्राम (मगध), वैरंजा चालिय पर्वत, राजगृह, श्रावस्ती और वैशाली में अपना वर्षावास किया। तथागत ने पर्यटन के क्रम में किन–किन वर्षों में किन–किन स्थानों की यात्रा की इसका प्रामाणिक और ठीक–ठीक समय बताना कठिन है। फिर भी बुद्ध के जीवन से संबंधित स्थलों का वर्णन प्राप्त साक्ष्यों पर करना संभव है जो आज पर्यटन की दृष्टि एवं धार्मिक तीर्थस्थल की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।[5]

कपिलवस्तु का लुम्बिनी–वन सिद्धार्थ की जन्मस्थली होने के कारण बौद्धों का तीर्थ स्थल बना। युवावस्था में विवाह होने के उपरांत वैभव विलास में सिद्धार्थ का मन नहीं लगा अपितु रोगी, वृद्ध, मृतक, को देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे दुःखों से मुक्ति प्राप्ति हेतु घर का त्याग कर परिभ्रमण पर निकल पड़े। वह भी पर्यटन की एक प्रक्रिया थी जिसका उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति था। पर्यटन का यह भी एक प्रमुख उद्देश्य होता है–मानसिक तनाव–जिसके कई कारण होते हैं–से मुक्ति, शांति प्राप्ति। सिद्धार्थ को तनाव था–वह था दुःखों से मुक्ति पाना और जीवन से सात्विक सत्य के आनन्द को प्राप्त करना। इस क्रम में सिद्धार्थ का प्रमुख ठहराव मगध की राजधानी राजगृह था। राजगृह के पार्श्ववर्त्ती श्रमणों, परिव्राजकों, तथा अन्य तपस्वियों से सिद्धार्थ को संतुष्टि नहीं मिली। अतः सिद्धार्थ महान् ज्ञान की खोज में 'गया' की ओर निकल पड़े। गया भी राजगृह की तरह अत्यंत पवित्र भूमि थी। सिद्धार्थ भ्रमण करते गया जिला के 'कुकिहार' नामक स्थान होते उरुबेला (बोधगया) पहुँचे। इस स्थान की महति प्राकृतिक सुंदरता का अवलोकन मज्झिम निकाय में किया जा सकता है। इसी बोधगया में उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई और सिद्धार्थ बुद्धत्व को प्राप्त होने के क्रम में बुद्ध कहलाए। सिद्धार्थ ने सुजाता का पायस भोजन वैशाख पूर्णिमा के दिन को प्रथम वेला में किया और उसी दिन संध्या में आठ मुट्ठी तृण दान में लिया और समाधि के लिए उपयुक्त स्थान को खोजते हुए संध्या को, बोधिवृक्ष (पीपलवृक्ष) के नीचे गए। श्रोत्रिय घसियारे के दिए तृण को बिछाकर सिद्धार्थ वृक्ष के नीचे बैठ गए। उस समय सिद्धार्थ ने संकल्प किया–''यह सभी बुद्धों से अपरित्यक्त स्थान है। यही दुःख पंजर के विध्वंसन का स्थान है। चाहे मेरा चर्म, हड्डी, नसे क्यों न शेष रह जाये, मेरा मांस रक्त ही क्यों न सूख जाय, पर बिना सम्यक्

संबोधि प्राप्त किए इस आसन को नहीं छोडूँगा। यह पवित्र स्थान ही 'वज्रासन' है। इस 'वज्रासन' की भूरि–भूरि प्रशंसा महिमा जातक–479 में तथा ह्वेनसांग द्वारा की गई है। इसी आसन पर समाधिस्थ हुए सिद्धार्थ मार को परास्त कर 'मारजित' और 'लोकजित' कहलाए। मार विजय के उपरांत सिद्धार्थ गौतम ने इसी स्थान पर रात्रि के तीन यामों में प्रथम तृतीयांश में अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान अर्जित किया, मध्यम याम में दिव्यचक्षु प्राप्त किया और अंतिम याम में 'प्रतीत्य–समुत्पाद' का ज्ञान लाभ किया। प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान ही परमज्ञान वाला मोक्ष ज्ञान है, जिसके लिए सिद्धार्थ प्रव्रजित हुए थे। प्रथम अभिसम्बोधि को प्राप्त कर बुद्ध उस पवित्र बोधिवृक्ष के नीचे सप्ताह भर बैठकर मोक्ष–ज्ञान का आनन्द लेते रहे। पश्चात् उन्होंने चार आर्य सत्यों को जाना।[6]

इस प्रकार बुद्ध ने विमुक्ति के परम आनन्द की अनुभूति का लाभ लिया। आज यह बोधगया समस्त विश्व के बौद्धों के लिए तीर्थस्थल, पर्यटन स्थल बन गया है। निश्चय ही यह भूमि महापवित्र है, धन्य है जहाँ की चप्पा–चप्पा भूमि का पर्यटन करके अथवा बैठकर बुद्ध ने पवित्र बनाया और स्वयं भी विमुक्ति का महाआनंद उठाया। इस आनन्द की अनुभूति प्राप्ति हेतु वर्तमान में भी विश्व के हर क्षेत्र से बौद्ध पर्यटकों का आगमन होता रहता है। वर्तमान में महाबोधि मंदिर के साथ–साथ भिन्न बौद्ध देशों यथा–थाइलैण्ड जापान, चीन, श्रीलंका, सिक्किम, भूटान आदि के मन्दिर दर्शनीय हैं।[7]

पश्चात् बुद्ध ने अपने आचार्य 'आरादकलाम' और उद्दकराम पुत्र' को अपना प्रथम ज्ञान देना चाहा लेकिन तब तक वे मृत्यु को प्राप्त हो गए थे। अतः बुद्ध ने ऋषिपत्तन (सारनाथ) में उन पाँच शिष्यों–कौडिन्य, वाप्य, भद्रिक, महानाम और अश्वजित, जिन्होंने उन्हें छोड़ दिया था, को अपना उपदेश दिया। वाराणसी के समीपस्थ सारनाथ भी एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल के रूप में पूज्य है। यहाँ का धम्मेख स्तूप दर्शनीय है। ऋषि पत्तन से बुद्ध राजगृह आए। राजगृह मगध की राजधानी थी। बुद्ध के लिए यह स्थान अत्यन्त प्रिय था बुद्ध ने आनन्द से कहा था–रमणीयं आनन्द राजगृहं, रमणीयो मिज्झकूटो पब्बतो.....मृगदायो। राजगृह का एक–एक स्थल बुद्ध को प्रिय था। यद्यपि बुद्ध ने मात्र 2,3,4, 17 और 20वाँ वर्षावास यहाँ किया था किन्तु वर्ष के शेष दिन यहीं बीतते थे। इस अवधि में कई महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं जिनका सम्बंध बुद्ध से था। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी राजगृह की पवित्र भूमि में सारिपुत्र, मौद्गल्यायन और महाकाश्यप को बौद्ध धर्म में प्रब्रजित किया जाना, जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

सत्यता यह है कि बुद्ध जीवन के प्रारम्भ से ही राजगृह से संबद्ध रहे। महाभि निष्क्रमण के क्रम में वे कपिलवस्तु से राजगृह आये पश्चात् बोधगया में बुद्धत्त्व की प्राप्ति हुई।

बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् राजगृह ही भगवान् बुद्ध की मुख्य कर्मभूमि बनी। मगध नरेश बिम्बिसार की इच्छा और असीम श्रद्धा ने बुद्ध को पुनः राजगृह आने को बाध्य किया था। यष्टि वन में बुद्ध ने बिम्बिसार और उनके लोगों को दीक्षित किया। उसके पश्चात शासक ने व्यक्तिगत रुप से बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में रुचि ली थी। इसने अपने अधीनस्थ असीति सहस्र गांवों के प्रतिनिधियों को बुद्ध के शरण में जाने को प्रेरित किया। श्रेणिक बिम्बिसार ने अपने राजवैद्य जीवक कौमार भृत्य को बुद्ध और भिक्षु संघ की चिकित्सा के लिए नियुक्त किया था। ऐसी अनेक गाथायें मिलती हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि बुद्ध ने राजगृह के अनेक प्रमुख ब्राह्मणों को अपने शरण में लिया था जो प्रारम्भ में उनके विरोधी थे। राजगृह के शीतवन में श्रावस्ती का 'अनाथपिण्डक' बुद्ध धर्म में दीक्षित हुआ। बुद्धत्व प्राप्ति के तीसरे वर्ष चारिका करते हुए तथागत ने कपिलवस्तु पहुँचकर राहुल को दीक्षित किया।[9]

राजगृह के चौथे वर्षावास में बुद्ध ने भिक्षुओं को गीत गाने और सुनने एवं शृंगार प्रियता पर प्रतिबंधित किया था। बुद्ध ने यहीं अपने भिक्षुओं को उद्देश–भोज श्लाक, पाक्षिक, उपोसथिक, प्रातिपदिक, शयनासन, प्रज्ञापक, चीवर–प्रतिग्राहक, चीवर–भाजक, यवागू–भाजक, फल भाजक, खाद्य भाजक आदि का विधान दिया था।[10]

भगवान बुद्ध को राजगृह के वेणुवन का कलंदक निवाप बहुत ही प्रिय था। यहाँ उन्होंने, माता–पिता आचार्य पत्नी, मित्र सेवक और साधु ब्राह्मणों की सेवा करने संबंधी तथ्यों पर प्रकाश डाला था। इसी स्थान पर तथागत ने सिगाल को पंचशील, हिसा अस्तेर, काम निषेध और मद्यनिषेध का उपदेश दिया था। उन्होंने पाप के चार स्थानों–राग,

द्वेष, मोह और भय के बारे में तथा सम्पत्ति को नष्ट करने वाले छः दोषों यथा–मद्य सेवन, चोरास्ते की सैर, नाच, तमाशा, जुआ, दुष्ट के संग और आलस्य के बारे में बताया था। बुद्ध ने मित्र की बड़ी अच्छी परिभाषा दी थी, उन्होंने कहा–जो उपकारी समान सुखी–दुःखी, हितवादी और अनुकम्पक है वही मित्र है तथा जो परधन हारक, बातूनी, खुशामदी और नाश में सहायक है–वह अमित्र है। कलंदनिवाप वह स्थान था, जहाँ से तथागत ने अपने धर्मोपदेशों से बहुतों की भलाई की थी। कई लोगों को दीक्षित किया था। सारिपुत्र को विषयों के त्याग, स्मृति, प्रस्थान आदि भावना की महत्ता की जानकारी दी गई थी। राजगृह के 20वें वर्षावास में महान् वैद्य जीवक को बुद्ध की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ था। जीवक का कर्म–क्षेत्र राजगृह ही था। कलंदनिवाप की ही तरह राजगृह का गृध्रकूट पर्वत तथागत को बहुत ही प्रिय था। यहीं न्यानोध परिव्राजक को तीन हजार शिष्यों के साथ तथागत ने बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। इसी पर्वत पर 'अटानाटीय' रक्षा की आवृत्ति की गई थी, जिसमें भूत प्रेत, राक्षस, यक्ष आदि से रक्षा के लिए सातों बुद्धों को नमस्कार, चार महाराजों का वर्णन किया था। यहीं बुद्ध ने माघ माणवक को दान की महत्ता से अवगत कराया था और कहा था–जीवन को प्रसन्न रखने हेतु दान आवश्यक है। यहीं बुद्ध ने भिक्षुओं को जूता पहनने का विधान दिया था। गृध्रकूट पर्वत पर ही सद्धर्म पुण्डरीक का उपदेश तथागत ने दिया था। इसी पर्वत के पादमूल में भ्रमण करते हुए बुद्ध को देवदत्त ने मारने का प्रयास किया था। बाद में नालागिरि नामक मतवाले हाथी को छोड़ा किन्तु बुद्ध ने उसे अपने वश में कर लिया। बाद में देवदत्त की मृत्यु हो गई।[11]

तथागत के चरणों के रजकण से राजगृह पूरी तरह पवित्र रहा। उन्हें गृध्रकूट, कलंदनिवाप और वेणुवन अत्यंत प्रिय था जहाँ से तथागत ने अपने उपदेशामृत से लोगों को तृप्त किया था। इसी पृष्ठभूमि में, अपनी ऐतिहासिक, धार्मिक और प्राकृतिक महत्ता को लेकर राजगृह सभी धर्म के लोगों के लिए प्रमुख पर्यटन तीर्थस्थल बना हुआ है।[12] यहाँ के गर्म चश्मों (कुण्डों) में स्नान के पश्चात् गृध्रकूट पर्वत, विश्व शांति स्तूप, रोप–वे मणियार मठ, स्वर्ण भण्डार और वेणुवन विहार, ग्लास ब्रिज विहार, घोरा कटोरा झील, पर्यटकों के लिए विशिष्ट आकर्षण का केन्द्र बन चुके हैं।

भगवान् बुद्ध ने अपनी चारिका के क्रम में अम्बलठ्ठिका, नालंदा, पाटलिपुत्र, और वैशाली आदि कई स्थानों को पवित्र किया था।

नालंदा मुख्यतः अपने विश्व प्रसिद्ध प्राचीन विश्वविद्यालय को लेकर प्रसिद्ध रहा किंतु इससे कई सौ वर्ष पूर्व ही इसको भगवान महावीर और भगवान बुद्ध की कर्मभूमि बनने का सौभाग्य मिला। बुद्ध ने प्रिय शिष्य सारिपुत्र की जन्मभूमि नालंदा का समीपस्थ ग्राम– सरिचक था। अशोक के समय यह 'सर्वास्तिवादियों' का गढ़ बना। नालंदा में ही बुद्ध ने उन कारणों पर प्रकाश डाला था जिनसे कुल (वंश) का नाश होता है। यहाँ का आम्रवन उन्हें बहुत प्रिय था। नालंदा में तथागत प्रायः विश्राम हेतु ठहरा करते थे। मौद्गल्यायन भी नालंदा के समीपस्थ ग्राम–कूल का था। नालंदा के सारिपुत्र और मौड्गल्यायन, दो पुत्रों ने बुद्ध का प्रिय शिष्य बनकर बौद्ध संघ की सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। विश्वविद्यालय के रूप में इस स्थान ने कुमारगुप्त के समय से पालवंशीय शासकों के समय तक अपूर्व प्रतिष्ठा पाई थी। आज विश्वविद्यालय के अवशेष है तथा यह पर्यटकों के लिए आकर्षण का अनोखा केन्द्र है। विश्वविद्यालय के खण्डहर विहार और यहाँ से प्राप्त मूत्तियाँ आदि प्राचीन इतिहास के गौरवमय पट के दर्शन के साक्ष्य हैं।[13]

राजगृह के बाद पाटलिपुत्र सदियों तक मगध जनपद की राजधानी के रूप में प्रख्यात रहा। प्राचीन राजवंशों में नंद, मौर्य शुंग और गुप्त वंश के शासकों के शासन काल में यह नगर अत्यंत प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था। बौद्ध साहित्य में आये वर्णनों से पाटलिपुत्र के प्रारंभिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। पांचवीं शताब्दी ई.पू. से छठी शताब्दी ई. के अंत तक यह नगर भारत के प्रमुख नगरों में एक था और भारत के विविध राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कार्यकलापों से अविछिन्न रूप से जुड़ा हुआ था।[14]

भगवान बुद्ध के समय यह 'पाटलिग्राम' था। उन्होंने यहाँ के कुछ गृहस्थों को शील के संबंध में उपदेश दिया था। जिस समय आजातशत्रु के मंत्री पाटलिपुत्र की किलाबंदी करा रहे थे, बुद्ध ने पाटलिपुत्र की भावी उन्नति की भविष्यवाणी की थी। यह नगर बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केन्द्र था और बुद्ध के जीवन काल में ही यहाँ 'कुक्कुटाराम'

नामक विहार का निर्माण हो चुका था। तथागत से अशोक के कालतक इस विहार की प्रसिद्धि बनी हुई थी। भगवान् ने यहाँ अनेक सारगर्भित व्याख्यान दिये थे। अंतिम बार कुसीनगर जाते समय तथागत ने पाटलिपुत्र को छोड़ते हुए गंगा नदी के जिस घाट से प्रस्थान किया था वह 'गौतमतिथ्य' (गौतम तीर्थ) के नाम से प्रख्यात हुआ। मौर्यो के समय यह नगर अपनी प्रसिद्ध की पराकाष्ठा पर था और बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र भी था। अशोक ने एक और बौद्ध विहार–अशोकाराम का निर्माण कराया था। सामंत पासादिका और महावंस के अनुसार तृतीय बौद्ध संगति की कार्यवाही इसी अशोका–राम में सम्पन्न हुई थी। अशोक के गुरु, 'मोग्गलिपुत्र तिष्य' की जन्मभूमि पाटलिपुत्र ही थी।[15]

आज पाटलिपुत्र बिहार की राजधानी एवं अशोककालीन पुरातात्विक अवशेष के कारण महत्ता को प्राप्त है।

बौद्ध तीर्थस्थलों में वैशाली की भी अपनी महत्ता है। सिद्धार्थ गौतम के समय में वैशाली अपने वैभव वैपुल्य शासन प्रणाली, शक्तिशाली गणतन्त्र, एकता तथा बड़े–बड़े ज्ञानी और वीरों से भी पूर्ण थी। बुद्ध ने अपना पाँचवाँ, और अंतिम वर्षावास वैशाली में किया था । यहाँ वे कूदागारशाला में विश्राम किया करते थे सुदिन्न और महालि वैशाली के थे और बुद्ध के प्रिय थे। वेश्या–पुत्री विमला वैशाली की ही थी और प्रसिद्ध भिक्षुणी थी। सिंहा भी वैशाली की थी और थेरियों में उसका चालीसवाँ स्थान था। बुद्ध ने अपने दिव्य प्रभाव से यहाँ के लोगों को धर्म में दीक्षित किया। वासिष्ठी, रोहिणी, अम्बपाली ने भी बौद्ध धर्म को ग्रहण कर, वैशाली की गरिमा को बढ़ाया था।[16]

निष्कर्ष

भगवान बुद्ध ने जीवन पर्यन्त विचरण करते हुए प्रायः सम्पूर्ण मगध के लोगों पर धर्म का प्रभाव छोडा था। राजगृह, नालन्दा, बोध गया आदि के अतिरिक्त ज्येष्ठीवन, गिरियक सरिचक, कूल (कोलित ग्राम) और घोषित ग्राम आदि अनेक बौद्ध स्थल हैं जहाँ बुद्धकालीन या उसके बाद की संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। पर्यटन की दृष्टि से इनका विकास तो नहीं हुआ है लेकिन धर्म और पुरातत्व की दृष्टि से इनकी महत्ता है। धर्म और पर्यटन की दृष्टि से यह स्थल सांस्कृतिक संगम स्थल है जहाँ से अहिंसा, प्रेम, एकता और विश्वबंधुत्व की स्थापना हेतु प्रेरणा मिलती है। इसलिए बिहार को पर्यटकों का स्वर्ग कहा जाता हैं।

संदर्भ सूची

1. The Tourist Industry, Norval A. J., London 1936
2. ऐंशियन्ट इंडियन कालोनाइजेशन इन सा. ई., ए. मजुमदार, पृ. 13–14
3. हिस्ट्री ऑव इंडियन लिटरेचर, विंटरनिट्ज, भाग 2, पृ. 156, तीतर जातक, मिलिंदपञ्हों।
4. निर्वाणकाण्ड–गाथा 2, पद्मपुराण, पर्व 13/45
5. जातकअट्ठ कथा (अविदूरेनिदानं) – 39, पृ. 43
6. मज्झिम निकाय–2,4,5 (बोधराजकुमार सुत्तन्त)
7. सुत्तनिपात 27/4
8. महाभारत, वन पर्व 84/82–103, अ. 88/11, अध्याय 95/11–12
9. अरियपरिसेन सुत्तन्त (म.नि. 1, 3, 6)
10. ह्वेनसांग (जगन्मोहन वर्मा, पृ. सं. 1980 वि.) पृ. 130, कलिंगबोधि जातक
11. अथ खो भगवा बोधिरुक्खमूले सत्ताहं एकपल्लंकेन निसीदि, विमुक्ति सुखं परिसंवेदी। महावग्गा (महाखन्धक) 1/1/1

12. दीघ निकाय – 6/31/43
13. एन्शियंट ज्योग्राफी आफ इण्डिया– कनिंघम, पृ. 486
14. महावग्गो 1/4/1/8, दी. नि. कूटदन्तसुत्त
15. विनयपिटक, महावग्गा, चम्खन्दक, पृ. 199
16. महावग्गो, प्रथम भाणादवार, चौवर खन्दंक
17. पूर्वोक्त, 1/5/5/9
18. पूर्वोक्त, 8/2/1–3
19. चुल्लवग 5/1/1–6
20. विनयपिटक (हि.) पृ. 475–76
21. दी. नि., सिगालोवाद सुत्त 3/8
22. म. नि. 3/5/9
23. महावग्गो, प्रथम भावावार
24. म. नि. 3/4/3
25. चुल्लवग्ग 7/2/8
26. महासुद्दसन जातक।
27. संयुक्त निकाय 40/9
28. 'द युनिवर्सिटी ऑफ नालन्दा' संकलिया।
29. विनयपिटक 1/226–230
30. विनयपिटक 1/226, दी.नि. (हिन्दी) पृ. 125
31. दी. नि. 2/86
32. समंतपासादिका भाग 1, पृ. 48
33. महावंस (हिन्दी) 5/275–276

****